विणय-सारो

(विनय सार)

मंगल आशीर्वाद :

परम पूज्य सिद्धान्तचक्रवर्ती

क्षपकराज शिरोमणि आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

लेखक :

आचार्य वसुनंदी मुनि

ग्रंथ : विणय-सारो (विनय सार)

मंगल आशीर्वाद : प.पू. सिद्धान्त चक्रवर्ती श्वेतपिच्छाचार्य
श्री विद्यानंद जी मुनिराज

ग्रंथकार : प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य
श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्व नंदिनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2026)

प्रतियाँ : 1000

ISBN : **978-93-94199-77-4**

मूल्य : 26/- (Not for Sale)

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)

प्राप्ति स्थल : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति कार्यालय
मो. 9971548889, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

संपादकीय

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते।
गुणाधिके पुंसि जनोऽनुरज्यते, जनानुरागप्रभवा हि संपदः॥

जितेन्द्रियपना विनय का कारण है, विनय से गुणों की प्रकर्षता प्राप्त होती है। अधिक गुणवान् पुरुष में जनसमूह अनुरक्त होता है और जनसमूह के अनुराग से सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं।

शशाङ्कनिर्मलाकीर्तिः सौभाग्यं भाग्यमेव च।
आदेयवचनत्वं च भवेत् विनयतः सताम्॥

—गुण.श्रा. 3/94

विनय से सज्जन पुरुषों को चंद्रमा के समान निर्मल कीर्ति, सौभाग्य, भाग्य और ग्राह्य वचनता प्राप्त होती है।

विनय वह सुगन्ध है जो व्यक्ति के आचरण से स्वयं प्रस्फुटित होती है। विनय वह चुम्बक है जो तीनों लोक में विस्तृत गुणों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। जिस प्रकार फलों से परिपूरित वृक्ष झुका हुआ दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार गुणों से युक्त मनुष्य भी विनम्र होता है। जिस प्रकार बिना बीज के धान्य उत्पन्न नहीं होती उसी प्रकार बिना विनम्रता के अन्य गुण भी मनुष्य में दृष्टिगोचर नहीं होते।

परम पूज्य प्राकृत भाषा चक्रवर्ती, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज द्वारा प्ररूपित यह **'विणय-सारो'** ग्रन्थ आध्यात्मिक परम्परा का एक

महत्वपूर्ण और मूल्यप्रधान अङ्ग है, जो मानव जीवन के व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक पक्ष को सूक्ष्मता से आलोकित करता है। यह प्राकृत ग्रन्थ 192 अनुष्टुप् छन्दों में लिपिबद्ध है। ग्रन्थ का विषय उसके सौन्दर्य व गहनता को तो प्रदर्शित करता है किन्तु उसकी सरसता और अधिक प्रतीत होती है। उसका भी कारण यह है कि यह ग्रन्थ उन आचार्य भगवन् के द्वारा लिपिबद्ध है जो स्वयं विनय की प्रतिमूर्ति हैं, जिन्हें देखकर विनय का लक्षण व स्वरूप स्वयं बोधगम्य हो जाता है।

सामान्यतः विनय को शिष्टाचार या नम्र व्यवहार तक सीमित समझा जाता है किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में विनय को कहीं अधिक व्यापक व गहन अर्थ के रूप में स्पष्ट किया है। उन्होंने कहा है–

गुणगुणीसु धम्मीसु, णम्मवित्तिजुदो सया।
गुणाकंखा पवित्तीए, विणइत्तो हु मण्णदे।।10।।

जो गुण–गुणिजनों में, धर्मियों में सदैव नम्रवृत्ति से युक्त है, गुणों की आकाङ्क्षा की प्रवृत्ति से युक्त है, वह विनयी माना जाता है।

आचार्य गुरुवर ने प्रारम्भ में विनय को पाँच भेदों में विभक्त किया है–लोकानुवृत्ति विनय, अर्थनिमित्तक विनय, कामतन्त्र विनय, भयविनय एवं मोक्ष विनय। पुनः इनको ग्रन्थ में स्पष्ट करते हुए मोक्ष विनय के पाँच भेद कहे–दर्शन विनय, ज्ञान विनय, चारित्र विनय, तप विनय एवं उपचार विनय। ग्रन्थ का विषय अत्यन्त रुचिपूर्ण व सुव्यवस्थित है।

अहङ्कार जहाँ विभाजन और टकराव को जन्म देता है, वहीं विनय समन्वय और सौहार्द का निर्माण करता है। अतः यह ग्रन्थ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र–परिवार, समाज और संयम–साधना में विनय की अनिवार्यता को रेखाङ्कित करता है। मधुर व हित वचन, दूसरों के गुणों के प्रति आदरभाव, अपने दोषों के प्रति जागरुकता, व्यवहार में शिष्टता और संयम–ये सभी विनय के मूर्त रूप हैं।

समकालीन सन्दर्भ में 'विणय-सारो' की प्रासङ्गिकता और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। आज जहाँ व्यक्ति अधिकारों और उपलब्धियों पर केन्द्रित होते जा रहें हैं, वहीं यह ग्रन्थ व्यक्ति को उसके कर्त्तव्य, मर्यादा, विनम्रता व उसके धर्म का स्मरण कराता है। पारिवारिक असन्तुलन, सामाजिक तनाव या मानसिक अशान्ति विनय के अभाव का ही परिणाम है। ऐसे में विनय के लिए प्रेरित करने वाला यह 'विणय-सारो' ग्रन्थ व्यक्ति, परिवार व समाज के लिए सन्तुलन व शान्ति का मार्ग प्रदर्शित करता है।

परमपूज्य प्राकृतभाषा चक्रवर्ती, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज का बहुआयामी व्यक्तित्व किसी परिचय की अपेक्षा नहीं करता। अनेक प्राकृत ग्रन्थों के लेखक, अनेक ग्रन्थों के सम्पादक, तीर्थोद्धारक, जिनशासन प्रभावक, अर्हत्रूपधारक, तीर्थङ्कर के लघु नन्दन, अनुत्तर साधक, साधना के शिखर पुरुष, अहिंसा के अग्रदूत, मीठे प्रवचनकार, चलते-फिरते शास्त्रालय, महासंघानुशासक, तपोमूर्ति आचार्य श्री के ग्रन्थ स्वयं उनके चिन्तन व ज्ञान की व्यापकता, गहनता व सूक्ष्मता का व्याख्यान करते हैं।

आचार्य श्री के शास्त्रों में शास्त्रीय गाम्भीर्य होते हुए भी दुरूहता नहीं है, वे सरल, सहज व बोधगम्य हैं। आचार्य श्री इस शताब्दी व प्राकृत जागरण के लिए एक वरदान स्वरूप हैं। उनके लिखित ग्रन्थों ने जैनविद्वत् जगत् में ही नहीं अपितु सामान्यविद्वत्जगत् में भी एक क्रान्ति को जन्म दिया। इस युग को प्राकृत के स्वर्ण युग के रूप में स्थापित कर दिया। प्रस्तुत ग्रंथ **''विणय-सारो''** अर्थात् विनयसार के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन-जन के श्रद्धापुंज परम पूज्य प्राकृतभाषा चक्रवर्ती, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी महाराज का संयम, तप, ज्ञान व साधना का सौरभ सहस्रों वर्षों तक विश्व को सुरक्षित करता रहे। गुरुवर श्री को आरोग्य लाभ हो एवं अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करें। परम पूज्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!

श्री शुभ मिति माघ शुक्ल पंचमी **ॐ अर्हं नमः**

श्री वीर निर्वाण संवत् 2552 **आर्यिका वर्धस्व नंदिनी**

वार-शुक्रवार 23.1.2026

श्री पुष्पदंत भगवान् जन्मस्थली व अन्तःकृत केवली

श्री अभय घोष मुनि निर्वाण स्थली तीर्थक्षेत्र एवं

सिद्धक्षेत्र काकंदी, देवरिया, उत्तर प्रदेश

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
1	मङ्गलाचरण	1-4	1
2	विनय-माहात्म्य	5-7	2
3	नम्रवृत्ति शिक्षक-महामंत्र	8-9	3
4	विनयी कौन?	10	3
5	विनय भेद	11	3
6	लोकानुवृत्ति विनय	12-13	4
7	अर्थनिमित्तक विनय	14	4
8	कामतन्त्र व भय विनय	15	4
9	मोक्ष-विनय	16-21	5
10	मोक्षविनय-भेद	22	6
11	दर्शन विनय	23-24	6
12	सम्यग्दर्शन लक्षण	25-26	7
13	सराग-वीतराग सम्यग्दर्शन	27-28	7
14	सम्यग्दर्शन से कर्मक्षय	29	8
15	निःशंकित अंग	30-32	8
16	निःकांक्षित अंग	33-35	9
17	निर्विचिकित्सा अंग	36-37	10

18	अमूढ़दृष्टि अंग	38-39	10
19	उपगूहन अंग	40-41	11
20	स्थितिकरण अंग	42-43	11
21	वात्सल्य अंग	44-46	12
22	प्रभावना अंग	47-48	13
23	अंग का माहात्म्य	49-50	13
24	सम्यक्त्व के आठ गुण	51	14
25	भक्ति	52	14
26	संवेग	53	14
27	निर्वेद	54	14
28	उपशम	55	15
29	गर्हा	56	15
30	आत्म निन्दा	57	15
31	अनुकंपा	58	16
32	वात्सल्य	59	16
33	सम्यग्दर्शन माहात्म्य	60-71	16
34	सम्यग्ज्ञान स्वरूप	72-74	19
35	चार अनुयोग	75	20
36	प्रथमानुयोग	76-77	20
37	करणानुयोग	78-79	20
38	चरणानुयोग	80	51

39	द्रव्यानुयोग	81	21
40	ज्ञानाचार भेद	82	22
41	स्वाध्याय	83-84	22
42	स्वाध्याय भेद	85	22
43	ज्ञान माहात्म्य	86-113	23
44	चारित्र विनय	114	29
45	चारित्र लक्षण	115	30
46	विनम्र कौन?	116-117	30
47	व्रत भेद	118	30
48	श्रावक व्रत	119	31
49	अणुव्रत	120	31
50	गुणव्रत	121	31
51	शिक्षाव्रत	122-123	31
52	श्रावक की ग्यारह प्रतिमा	124-125	32
53	श्रावक के कर्तव्य	126-127	32
54	श्रमण व्रत	128-129	33
55	मोह नाश से दोष विनाश	130	33
56	असंयम त्याग	131	34
57	वैराग्य महिमा	132-133	34
58	रत्नत्रय बिना मोक्ष नहीं	134	34
59	बोधि दुर्लभता	135-137	35

60	समत्व भाव	138	35
61	एकत्व भाव	139	36
62	समाधि क्या?	140-141	36
63	विनय का फल	142-143	37
64	तप विनय	144	37
65	तप लक्षण	145	37
66	तप भेद	146-149	38
67	अनशन तप	150	39
68	अवमौदर्य तप	151	39
69	वृत्ति परिसंख्यान तप	152	39
70	रसत्याग तप	153-154	39
71	विविक्त-शय्यासन तप	155	40
72	कायक्लेश तप	156-157	40
73	प्रायश्चित्त तप	158	41
74	विनय तप	159	41
75	वैय्यावृत्ति तप	160	41
76	स्वाध्याय तप	161	41
77	व्युत्सर्ग तप	162	42
78	ध्यान तप	163	42
79	तप विनय लक्षण	164-165	42
80	तप विनय से आत्मशुद्धि	166	43

81	उपचार विनय	167-168	43
82	उपचार विनय भेद	169	44
83	कायिक विनय	170	44
84	वचन विनय	171	44
85	मानसिक विनय	172	44
86	परोक्ष विनय	173-174	45
87	उपचार विनय महिमा	175-177	45
88	विनय का वैशिष्ट्य	178-186	46
89	ग्रंथकार की लघुता	187	48
90	अन्तिम मङ्गलाचरण	188-189	48
91	ग्रन्थ प्रशस्ति	190-192	49

विणय-सारो

(विनय सार)

मङ्गलाचरण

अरिहा मंगलं णिच्चं, सिद्धा लोयम्मि मंगलं।
मंगलं सव्व-साहू य, जेण्ह-धम्मो सुमंगलं।।1।।

लोक में अरिहंत नित्य मंगल हैं, सिद्ध मंगल हैं, सर्व साधु मंगल हैं और जैन धर्म मंगल है।

वीदरायं णमंसामि, सव्व-दोसादु वज्जिदं।
पंचकल्लाण-संजुत्तं, घादि-कम्म-विणासगं।।2।।

पंचकल्याणक से युक्त, घातिया कर्मों के विनाशक, सर्व दोषों से रहित वीतरागी तीर्थङ्कर जिनेन्द्र को मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) नमस्कार करता हूँ।

संतिसिंधुं सिरीपायं, जयकित्तिं सुसंजमिं।
देसभूसण-सूरिं च, विज्जाणंदं णमामि हं।।3।।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, आध्यात्मयोगी सुसंयमी आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज, भारतगौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज, राष्ट्रसंत, सिद्धान्त

चक्रवर्ती, क्षपकराज शिरोमणि आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

विणयेण विणा को वि, खमो णो करिदुं हिदं।
तदो विणयसारं हं, कित्तिस्सामि हिदाय हि।।4।।

विनय के बिना कोई भी स्वपर हित करने में समर्थ नहीं होता। अतः सर्वहित के लिए ही मैं **'विनयसार'** नामक ग्रंथ को कहूँगा।

विनय-माहात्म्य

णाणस्स विणयो मूलं, झाणस्स विणयो धणं।
गुणाणं विणयो बीअं, विणयो सव्व-साहगो।।5।।

ज्ञान का मूल विनय है, ध्यान का धन विनय है, गुणों का बीज विनय है, विनय सर्व साधक है।

सेयस्स विणयो ठाणं, विणयो पाव-णासगो।
विणयो संति-मग्गो य, विणयो सुहदो गुणो।।6।।

श्रेय का स्थान विनय है, पाप का नाशक विनय है, शांति का मार्ग विनय है और सुखदायक गुण विनय है।

मोक्खस्स कारणं णिच्चं, विणयो सील-कारणं।
सुहस्स विणयो हेदू, सुगुणाणं महा गिहं।।7।।

विनय सदैव मोक्ष का कारण है, स्वभाव का कारण है। विनय सुख का हेतु एवं सुगुणों का महागृह है।

नम्रवृत्ति शिक्षक-महामंत्र

दुहे सुहे भयट्ठाणे, पहे रणे णगे जले।
णमोयार-महामंतं, विसुद्धीए जवेज्ज हु।।8।।

दु:ख में, सुख में, भयस्थान में, मार्ग में, युद्ध में, पर्वत में, जल में कहीं भी विशुद्धिपूर्वक णमोकार महामंत्र जपना चाहिए।

विणय-णम्मवित्तीणं, सव्वविहव-दायगं।
सिक्खवअं महामंतं, सगचित्तम्मि धारदु।।9।।

विनय या नम्रवृत्ति को सिखाने वाले, सभी वैभव को देने वाले महामंत्र को अपने चित्त में धारें।

विनयी कौन?

गुणगुणीसु धम्मीसु, णम्म-वित्ति-जुदो सया।
गुणाकंखा-पवित्तीए, विणइत्तो हु मण्णदे।।10।।

जो गुण-गुणी में, धर्मियों में सदैव नम्र वृत्ति से युक्त है, गुणों की आकांक्षा की प्रवृत्ति से युक्त है वह विनयी माना जाता है।

विनय-भेद

सुहलोगाणुवित्ती य, अत्थणिमित्तगो तहा।
कामतंतो भयो मोक्खो, विणयो खलु पंचहा।।11।।

विनय पाँच प्रकार की कही गई है—शुभ लोकानुवृत्ति विनय, अर्थनिमित्तक विनय, कामतंत्र विनय, भय विनय एवं मोक्ष विनय।

लोकानुवृत्ति विनय

भासाणुवित्ति-अब्भुट्ठाणं तह अणुवत्तणं।
देवपूया स-सत्तीए, सेट्ठ-आसण-तिप्पणं॥12॥

सुदव्वयालदाणं च, णिय-अंजलि-पग्गहो।
जाण लोगाणुवित्ती हु, विणयो जस-वड्ढगो॥13॥ (जुम्मं)

किसी के अनुकूल बोलना, आसन से उठना, किसी की सेवा-सुश्रूषा करना, शक्तिपूर्वक देव-पूजा, श्रेष्ठ आसन देना, द्रव्य व काल के योग्य दान देना, दोनों हाथों को जोड़ना, यश की वृद्धि करने वाली लोकानुवृत्ति विनय है।

अर्थनिमित्तक विनय

स-पओजण-सिद्धीए, सुमिट्ठिट्ठाइ-भासणं।
अंजलिकरणं आदी, अत्थणिमित्तगो सया॥14॥

अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए मिष्ट, इष्टादि वचन बोलना, हाथ जोड़ना आदि सदा अर्थनिमित्तक विनय है।

कामतन्त्र व भय विनय

कामस्स णमणं आदी, कामतंतो विजाणह।
अणुऊल-पवित्ती य, भयेणं विणयो भयो॥15॥

काम पुरुषार्थ के लिए अनुकूल प्रवृत्ति, नमन आदि कामतंत्र विनय जाननी चाहिए। तथा भय से अनुकूल प्रवृत्ति व नमन आदि भय विनय जाननी चाहिए।

मोक्ष-विनय

रयणत्तय-धारीणं, च रयणत्तयस्स हि।
विणय-कुव्वणं णेयो, मोक्खस्स विणयो सया।।16।।

रत्नत्रय व रत्नत्रय-धारियों की विनय करना सदा मोक्ष विनय जाननी चाहिए।

सम्मत्त-णाण-चारित्तं, मोक्खमग्गो विजाणह।
रयणत्तय-हीणो जो, सो लहदे दुहं सया।।17।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र मोक्षमार्ग जानना चाहिए। जो रत्नत्रय से हीन है वह सदा दुःख प्राप्त करता है।

सम्मत्ताइं विणा जो वि, अप्पस्सज्झाण-मिच्छदे।
णहपुप्फेहि सो मूढो, बंझासुदस्स मालिगं।।18।।

जो सम्यक्त्वादि अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के बिना आत्मा के ध्यान की इच्छा करता है वह मूर्ख आकाश के पुष्पों से बंध्या के पुत्र के लिए माला की इच्छा करता है।

सम्मत्त-णाण चारित्त-रयणत्तय-सेवणं।
रसायणं व मण्णेज्ज, पुण्णगदि-सुदायगं।।19।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय का सेवन रसायन के समान है, जो पुण्यगति को देने वाला माना जाता है।

सम्मत्तणाण-वेरग्ग-संजमेहि य संजुदो।
णासित्ता सव्व-कम्माणि, मोक्खं लहदि सासयं।।20।।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, वैराग्य व संयम से संयुक्त जीव सर्वकर्मों का नाशकर शाश्वत मोक्ष प्राप्त करता है।

दुहणासग-सम्मत्तं, णाणं किलिस-हारगं।
पुज्जत्तं देदि चारित्तं, णिव्वाणं रयणत्तयं।।21।।

सम्यग्दर्शन दुःख का नाश करने वाला व सम्यग्ज्ञान क्लेश हारक है। सम्यक् चारित्र पूज्यता को देता है एवं रत्नत्रय निर्वाण प्रदान करता है।

मोक्षविनय-भेद

दंसण-णाण-चारित्त-तवुवयार-भेयदो।
पंचविहो सया मोक्ख-विणयो य विजाणह।।22।।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप व उपचार के भेद से मोक्ष विनय सदा पाँच प्रकार की जाननी चाहिए।

दर्शन विनय

सम्मत्तस्स हु णिद्दोसं, णिरदियार-पालणं।
सद्दहणं च अप्पस्स, दंसणविणओ खलु।।23।।

सम्यक्त्व का निरतिचार-निर्दोष पालन करना एवं आत्मा का श्रद्धान करना निश्चय से दर्शन विनय है।

सय विणयवित्ती य, सद्दिट्ठीसु सुपालणं।
सम्मत्तस्स विसुद्धीए, दंसण-विणयो वरो॥24॥

सम्यग्दृष्टि जीवों में विनयवृत्ति एवं विशुद्धिपूर्वक सम्यग्दर्शन का पालन करना श्रेष्ठ दर्शन विनय है।

सम्यग्दर्शन लक्षण

सव्वण्हूव्व सुदेवो णो, धम्मो दया समो णहि।
णिग्गंथोव्व गुरू णत्थि, सद्दंसणस्स लक्खणं॥25॥

सर्वज्ञ के समान कोई देव नहीं है, दया के समान कोई धर्म नहीं है, निर्ग्रंथ के समान कोई गुरु नहीं है। ऐसा मानना सम्यग्दर्शन का लक्षण है।

सुसड्ढा सच्चिदप्पम्मि, सम्मत्तं णिच्छयेण य।
परमप्पत्त-हेदू य, कम्मिंधण-विणासगं॥26॥

निश्चय से स्वचिद्रूप में सम्यक् श्रद्धा सम्यग्दर्शन है। यह सम्यक्त्व परमात्मपने का हेतु है और कर्म रूपी ईंधन का विनाशक है।

सराग-वीतराग सम्यग्दर्शन

सरायं समसंवेगा-णुकंवत्थिग-संजुदं।
मेत्तं अप्पविसुद्धी हि, वीयरायं सुदंसणं॥27॥

सम अर्थात् प्रशम, संवेग, अनुकंपा व आस्तिक्य लक्षण से युक्त सराग सम्यग्दर्शन है एवं आत्मविशुद्धि मात्र ही वीतराग सम्यग्दर्शन है।

जिणसुदगुरूसुं जो, तच्चेसु सद्दहेदि वा।
संकाइदोसहीणो सो, गुणट्ठेण विहूसिदो।।28।।

जो जिनेंद्रदेव, शास्त्र व गुरुओं पर अथवा तत्त्वों पर श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि शंकादि दोष से हीन व आठ गुणों से विभूषित होता है।

सम्यग्दर्शन से कर्मक्षय

अट्ठंगजुदसम्मत्तं, सव्वदोसविवज्जिदं।
समत्थं खयिदुं कम्मं, सवाहिणी-णिवोव्व दु।।29।।

सभी दोषों से रहित व आठ अंगों से युक्त सम्यग्दर्शन कर्मों को क्षय करने में उसी प्रकार समर्थ होता है जिस प्रकार सेना से युक्त राजा शत्रु को नष्ट करने में समर्थ होता है।

नि:शंकित अंग

धम्म-जिणेसु तच्चेसु, णिग्गंथेसु ण संकदे।
मोक्खमग्गे वि णो जो सो, णिस्संकिदो मणिज्जदे।।30।।

जो जिनधर्म, जिनेन्द्रदेव, निर्ग्रंथ गुरु, मोक्षमार्ग व तत्वों में शंका नहीं करता वह नि:शंकित माना जाता है।

णिच्छयेण जिणो देवो, तच्चं च तेहि भासिदं।
ण संकेदि कया जो सो, णिस्संको देवपूइदो।।31।।

जिनेंद्रदेव ही निश्चय से देव हैं, उन जिनेंद्रप्रभु के द्वारा भाषित ही तत्त्व कहलाता है। जो इसमें शंका नहीं करता वह देवों के द्वारा पूजित निःशंकित अंग का धारक है।

अणेगंदजुदं वत्थुं, विणिद्दिट्ठं जिणेहि हु।
मण्णदे अण्णहा णो जो, सो णिस्संको य णिब्भयो।।32।।

जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा वस्तु अनेकांत (अनेक धर्म) से युक्त निर्दिष्ट की गई है। जो इसे अन्यथा नहीं मानता वह निःशंक और निर्भय है।

निःकांक्षित अंग

दाणं देच्चा सुपत्ताणं, तवं कडुअ दुस्सहं।
पंचगुरुण भत्तिं च, णिक्कंखिदो ण कंखदे।।33।।

जो सुपात्रों के लिए दान देकर, दुःसह तप करके व पंचगुरुओं की भक्ति करके कुछ नहीं चाहता वह निःकांक्षित है।

संसारदेहभोयाणं, सुहं कम्माण बंधगं।
जोगत्तयेण कंखेदि, तं ण णिक्कंखिदो भवी।।34।।

संसार, देह, भोगों के सुख निश्चय से कर्मों के बंधक हैं। जो योगत्रय से उनकी आकांक्षा नहीं करता वह भव्य जीव कांक्षा से रहित है।

धम्मं कडुअ भोयाइं, मूढण्णाणी दु इच्छदे।
दायित्ता रयणं कच्चं, कंखेदि हि जहा तहा।।35।।

अज्ञानी जीव धर्म करके भोगों की आकांक्षा उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार मूर्ख रत्न देकर काँच की इच्छा करता है।

निर्विचिकित्सा अंग

मलेण लित्त-देहे वि, धम्मीण रोय-पीडिदे।
अंगो णिव्विदुगुंछा सो, दुगुंछज्जेदि णेव दु॥36॥

धर्मियों की मल से लिप्त देह होने पर अथवा रोग से पीड़ित होने पर भी जो उनसे ग्लानि नहीं की जाती, वह निर्विचिकित्सा अङ्ग जानना चाहिए।

महाअसुइ-देहो वि, रयणत्तय-कारणं।
साहूसु णो दुगंछेदि, णेयो णिव्विदुगुंछगो॥37॥

महा अपवित्र यह शरीर भी रत्नत्रय का कारण है। जो जीव उन रत्नत्रयधारक साधुओं में ग्लानि नहीं करता है, वह निर्विचिकित्सक जानना चाहिए।

अमूढ़दृष्टि अंग

मिच्छामग्गम्मि मिच्छेसु, जो सो पीदिं ण कुव्वदे।
मण्णे अमूढदिट्ठी य, अमूढो भव-धंसगो॥38॥

मिथ्यामार्ग में और मिथ्यादृष्टियों में जो प्रीति नहीं करता है वह अमूढ़दृष्टि माना जाता है। अमूढ़दृष्टि अंग का धारक संसार का नाश करने वाला है।

धम्मे देवम्मि णिग्गंथे, दाणे सत्थे हिदाहिदे।
करदे जो ण मूढत्तं, सो अमूढो गुणी सया॥39॥

जो धर्म, देव, निर्ग्रन्थ गुरु, दान, शास्त्र, हित व अहित में मूढ़ता नहीं करता वह गुणी मनुष्य सदैव अमूढ़दृष्टि है।

उपगूहन अंग

दोसा पस्सिय णाणीहिं, साधम्मीणं मुणीण य।
ताण छादणं बोहव्वं, सम्मत्तंगुवगूहणं॥40॥

साधर्मी वा साधुओं के दोषों को देखकर उनका आच्छादन करना सम्यक्त्व का उपगूहन अंग जानना चाहिए।

सच्चम्मि जिणमग्गम्मि बालासत्तम्मि आसिदे।
थयदि जणिदं णिंदं, जो सो दु उवगूहगो॥41॥

सत्य (यथार्थ) जिनमार्ग में बालक या अशक्त साधर्मीजनों के आश्रित होने से उसमें उत्पन्न हुई निन्दा को जो आच्छादित करता है, वह सदैव उपगूहन अंग से युक्त है।

स्थितिकरण अंग

सम्मत्त-वद-धम्मादो, देसणादीहि वा पुणो।
चलिद-ठावणं धम्मे, सुठिदिकरणं सया॥42॥

सम्यक्त्व, व्रत या धर्म से चलायमान जनों को उपदेशादि के माध्यम से पुनः धर्म में स्थापित करना सदा स्थितिकरण अंग जानना चाहिए।

उम्मादादो पमादादो, काम-मोह-मदादु वा।
पडिदाण पुणो धम्मे, ठावगो ठिदिकारगो।।43।।

उन्माद या प्रमाद से, काम, क्रोध या मद से पतित जनों को धर्म में पुनः स्थापित करने वाला स्थितिकरण अंग का धारक है।

वात्सल्य अंग

साधम्मीणं गुणेसु च, मायाइ-दोस-वज्जिदा।
पीदी गुणो दु वच्छल्लं, सया धम्मस्स साहणं।।44।।

साधर्मीजनों के गुणों में मायादि दोष से रहित प्रीति वात्सल्य गुण है। वह वात्सल्य सदैव धर्म का साधन है।

पडिपत्ती जहाजोग्गं, साहू वदी गुणी पडि।
सया णिच्छलभावेणं, वच्छल्लं पज्जरिज्जदे।।45।।

साधु, व्रती व गुणियों के प्रति निश्चल भाव से यथायोग्य प्रतिपत्ति (व्यवहार) करना वात्सल्य कहा जाता है।

वदीणं जिणधम्मीणं, रोगाइ-पीडिदाण य।
सेवा-संबोहणादीहिं, वच्छल्लं धम्म-वड्ढणं।।46।।

जिनधर्मियों, व्रतियों व रोगादि से पीड़ित जनों की सेवा, संबोधनादि से धर्मवर्द्धन करना वात्सल्य है।

प्रभावना अंग

संसारे विज्जमाणस्स, मिच्छा-तमस्स णासणं।
जिणभासिद-धम्मस्स, उज्जोदणं पहावणा॥47॥

संसार में विद्यमान मिथ्यातम का नाश करना एवं जिनेंद्र भगवान् द्वारा कहे गए धर्म का उद्योत करना प्रभावना है।

पूया-दाण-वदीहिं च, तव-णाणेहि सव्वदा।
अणवेक्खिद-वित्तीए, जिणधम्मं च वड्ढदु॥48॥

पूजा, दान, व्रत, तप और ज्ञान आदि के माध्यम से अनपेक्षित वृत्ति से सदैव जिनधर्म को बढ़ाना चाहिए।

अंग का माहात्म्य

आराहगा इगंगस्स, गदा णागं सुरालयं।
जो सव्वंगेण संजुत्तो, किं णो मोक्खं लहेज्ज सो॥49॥

एक-एक अंग के आराधक भी देवालय या स्वर्ग को प्राप्त हुए। जो सभी अंगों से युक्त हैं, वह मोक्ष प्राप्त क्यों नहीं करेंगे? अर्थात् अवश्य प्राप्त करते हैं।

अट्ठ-गुण-जुदं चित्तं, समत्तेणं च जस्स वि।
णेव दुही कमेणं सो, सारज्जं लहदे सिवं॥50॥

जिसका चित्त आठ गुणों से युक्त है और समत्वभाव से भी युक्त है वह कभी दु:खी नहीं होता और क्रम से स्वर्ग का साम्राज्य व मोक्ष प्राप्त करता है।

सम्यक्त्व के आठ गुण

भत्ति-संवेअ-णिव्वेआ, पसमो गरहा तहा।
णिंदाणुकंप-वच्छल्लं, सम्मत्तस्स गुणा वसू।।51।।

भक्ति, संवेग, निर्वेद, प्रशम, गर्हा, आत्मनिंदा, अनुकंपा और वात्सल्य ये सम्यक्त्व के आठ गुण हैं।

भक्ति

गुणरायो सुपुज्जेसु, सुसड्ढा विणयो तहा।
स-सरूवाणुसंधाणं, भत्ती गुणो हु उच्चदे।।52।।

पूज्यजनों के गुणों में अनुराग, श्रद्धा व विनय करना अथवा अपने स्वरूप का अनुसंधान करना भक्ति नामक गुण कहा जाता है।

संवेग

णिद्दोस-देव-धम्मेसु, तच्च-सत्थ-गुरूसु य।
धम्म-मग्गे सुहो रागो, संवेगो सो हु भासिदो।।53।।

निर्दोष देव, धर्म, तत्त्व, शास्त्र, गुरु व धर्ममार्ग में शुभ राग ही संवेग कहा गया है।

निर्वेद

सप्पं मणिय भोयाइं, भवसोक्ख-दुहाणि य।
णिव्वेओ जं सुवेरग्गं, रोय-घरं तणं तहा।।54।।

भोगों को सर्प मानकर, संसार के सुखों को दु:ख मानकर तथा शरीर को रोगों का घर मानकर जो वैराग्य होता है, वही निर्वेद है।

उपशम

कोहादीण कसायाणं, णुव्वेगो जस्स माणसे।
पसमेणं पसंतप्पा, जो सो हु उवसामगो।।55।।

जिसके चित्त में क्रोधादि कषायों का उद्वेग नहीं है, एवं प्रशम भाव युक्त प्रशान्तात्मा है, वह उपशम भाव से युक्त है।

गर्हा

रायदोसणिमित्तेणं, जणिददोसभासणं।
गुरुहुत्ते सुभत्तीए, गरहा सय भासिदा।।56।।

राग व द्वेष के निमित्त से उत्पन्न दोषों को गुरु के सम्मुख भक्तिपूर्वक कहना गर्हा कही गई है।

आत्म-निन्दा

कुकम्मेसु पवित्तीसु, इत्थीपुत्ताइ-हेदुणा।
स-णिंदणं णिवत्तीए, णिंदा णाम महागुणो।।57।।

स्त्री एवं पुत्रादि के कारण कुकर्मों में प्रवृत्ति होने पर उनकी निवृत्ति के लिए अपनी निंदा करना, निंदा नामक महागुण है।

अनुकंपा

भवसिंधुम्मि बुड्ढंता, संसारी अवयज्झिय।
अद्दं चित्तं दयाए हु, अणुकंपा य भासिदो।।58।।

संसार सागर में डूबे हुए संसारियों को देखकर जिसका चित्त दया से भीग जाता है, वह उसका अनुकम्पा गुण कहा गया है।

वात्सल्य

सुधम्मीणं च साहूणं, विग्घुप्पण्णे तवम्मि य।
णिवत्ती ताण वच्छल्लं, दाणसेवाहि सव्वदा।।59।।

धर्मात्माओं और साधुवर्ग की तपस्या में विघ्न उत्पन्न होने पर दान व सेवा के द्वारा उसकी निवृत्ति करना सदा वात्सल्य गुण जानना चाहिए।

सम्यग्दर्शन माहात्म्य

सम्मत्तं दुल्लहं लोए, सम्मत्तं सिवसाहणं।
णाणवदाण-बीयं च, मूलं धम्मतरुस्स दु।।60।।

लोक में सम्यग्दर्शन दुर्लभ है, सम्यक्त्व मोक्ष का साधन है और ज्ञान व चारित्र का बीज है एवं सम्यक्त्व ही धर्म रूपी वृक्ष का मूल है।

सम्मत्तेण विणा णाणं, वेरग्गं ण वदं तवो।
अप्पज्झाणं ण संवेगो, मोक्खमूलं हि तं सया।।61।।

सम्यक्त्व के बिना ज्ञान नहीं होता, वैराग्य, व्रत, तप, आत्मध्यान व संवेग नहीं होता। वह सम्यग्दर्शन सदा ही मोक्ष का मूल है।

सम्मत्तेण विणा दाणं, पूया सेवा वदं तवो।
पुण्णस्स णेव मोक्खस्स, भासिदं जिणसासणे।।62।।

सम्यक्त्व के बिना दान, पूजा, सेवा, व्रत व तप–पुण्य के लिए तो होता है किन्तु कभी मोक्ष के लिए नहीं होता। ऐसा जिनशासन में कहा गया है।

पाणहीणो मिदो णेयो, सम्मत्तादु जहा तहा।
विवज्जिदो णरो जो सो, चलंतो वि मिदो सया।।63।।

जिस प्रकार प्राण से हीन मृत कहा जाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व से रहित चलता हुआ मनुष्य भी मृतक के समान ही जानना चाहिए।

लहदे पंचकल्लाणं, णिवसक्काइ–पूइदो।
होदि हु अरिहो सिद्धो, सम्मत्ताइ–विहूसिदो।।64।।

सम्यक्त्वादि से विभूषित जीव राजा व इंद्रादि के द्वारा पूज्यता को प्राप्त होता है, पंचकल्याणक को प्राप्त होता है एवं अरिहन्त व सिद्ध होता है।

दाणं पूयं पकुव्वेदि, सम्मत्ताइ–सुभूसिदो।
अब्भुदय–सुहं–जो सो, णिस्सेयसं च पावदे।।65।।

जो मनुष्य दान व पूजा करता है, सम्यक्त्वादि से सुभूषित है, वह अभ्युदय सुख व निःश्रेयस सुख को प्राप्त करता है।

णरस्स सुलहा लोए, वाहणित्थी धणं णिही।
वरं दुल्लहं रज्जादो, रयणं हु सद्दंसणं॥66॥

मनुष्य के लिए इस लोक में वाहन, स्त्री, धन व निधि सब सुलभ है। किन्तु सम्यग्दर्शन रत्न राज्यादि से भी अधिक दुर्लभ है।

सद्दंसणेण सद्धिं च, णिरय-वास-उत्तमो।
सम्मत्तेण विणा सग्गे, णेव जीवो वि सोहदे॥67॥

सम्यग्दर्शन के साथ नरक में वास करना भी उत्तम है किन्तु सम्यक्त्व के बिना स्वर्ग में भी जीव सुशोभित नहीं होता।

तेजस्सी वर-विण्णाणी, उज्जमादीहि संजुदो।
वर-संघडण-जुत्तो, महावीरो महासयो॥68॥

खिदिणाहो जसस्सी वा, धणधण्णाइ-संजुदो।
रज्जभोयी विजेदारी, धम्मट्ठकाम-साहगो॥69॥

उत्तम-महिमावंतो, सव्वधम्मफलेहि वि।
सव्वक्ख-सुह-संपण्णो, सम्मत्ताइ-विहूसिदो॥70॥ (तिगं)

सम्यक्त्वादि से विभूषित नर तेजस्वी, उत्कृष्ट विज्ञानी, उद्यमादि से संयुक्त, उत्कृष्ट संहननधारी, महावीर, महा-आशय युक्त, पृथ्वीनाथ, यशस्वी, धन-धान्यादि से संयुक्त, राज्य का भोग करने वाला, शत्रुओं को जीतने वाला, धर्म-अर्थ व काम का साधक, उत्तम महिमावान, सर्व धर्म के फलों से संपन्न तथा सर्व सुख से संपन्न होता है।

सद्दंसणे सुदिट्ठीसु, विणयं जो हु धारदे।
सो हु आसण्ण-भव्वुल्लो, दंसणविणयी गुणी॥71॥

जो सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्दृष्टियों में सदा विनयभाव धारण करता है वह आसन्नभव्य जीव दर्शनविनय युक्त व गुणी है।

सम्यग्ज्ञान स्वरूप

जेण चित्तं णिरुंभेज्ज, जेण तच्चं दु बोहदे।
सेयमग्गम्मि रायो य, तं णाणं जिणसासणे॥72॥

जिससे चित्त का निरोध होता है, जिससे तत्त्व का बोध होता है, जिससे श्रेयोमार्ग अर्थात् कल्याण के मार्ग में राग होता है, उसे ही जिनशासन में ज्ञान कहा गया है।

विसयादो विरत्तो दु, विड्ढी धम्मस्स जेण य।
सुपवित्ती णियप्पम्मि, तं णाणं जिणसासणे॥73॥

जिसके द्वारा इंद्रिय-विषयों से विरक्ति होती है, जिसके द्वारा धर्म की वृद्धि होती है, जिसके द्वारा निजात्मा में सम्यक् प्रवृत्ति होती है, उसे ही जिनशासन में ज्ञान कहा गया है।

वसुअंगजुदं णिच्चं, सव्वदोसविवज्जिदं।
सरूवखावगं णाणं, तत्थूणं हु जहा तहा॥74॥

आठों अंगों से युक्त, सभी दोषों से रहित, वस्तुओं के यथा-तथा स्वरूप का कथन करने वाला ज्ञान कहा जाता है।

चार अनुयोग

जिणिंदवयणं णेयं, चदुहा णावहारगं।
पढमं करणं, णिच्चं, चरणं दवियं तहा।।75।।

जिनेन्द्र प्रभु के वचन नित्य ही पापों का नाश करने वाले हैं। वे चार प्रकार के जानने चाहिए—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग।

प्रथमानुयोग

पुराण-चरियत्थाणं, अक्खादं पढमं तहा।
वित्थरेज्ज हु सण्णाणी, बोहि-समाहि-दायगं।।76।।

जो पुराण, चरित्र तथा समस्त अर्थों का आख्यान करने वाला है, बोधि व समाधि को देने वाला है, ऐसे प्रथमानुयोग का सम्यग्ज्ञानी सदैव विस्तार करें।

गणीहि णाणसिंधूदो, गहित्ता जस्स कुव्विदा।
वरिसा पढमं णीरं, धम्मणेहेण पिज्जदु।।77।।

ज्ञान (दिव्यध्वनि) रूपी समुद्र से ग्रहण कर गणधरों ने जिसकी वर्षा की ऐसे प्रथमानुयोग रूपी जल को धर्मस्नेह से बार-बार पियें।

करणानुयोग

लोयालोयस्स भेयं च, भासदि जुगवट्टणं।
करणं अप्पभावा य, चदुगदिं च वण्णदे।।78।।

करणानुयोग लोक व अलोक के भेद, युगवर्तन, आत्मा के भावों का एवं चतुर्गति का वर्णन करता है।

पहाणसावये राये, वा साहुम्मि मिदे तहा।
गहणे गंथं सिद्धंतं, पव्वेसु य पढेज्ज णो।।79।।

प्रधान श्रावक, राजा या साधु की मृत्यु होने पर, ग्रहण पड़ने पर या पर्वों में सिद्धांत ग्रंथों को नहीं पढ़ना चाहिए।

चरणानुयोग

मुणि-सावग-धम्मस्स, चरणं सुणिरूवगं।
भव्वेहि मोक्खपत्तीए, पढिदव्वं सुद्धीइ दु।।80।।

भव्यजीवों को मोक्ष की प्राप्ति के लिए मुनि व श्रावक के धर्म का सम्यक् निरूपण करने वाले चरणानुयोग को विशुद्धिपूर्वक पढ़ना चाहिए।

द्रव्यानुयोग

जीवाजीवाइ-दव्वाणं, पुण्णपावाइ-खावगं।
बंधमोक्खाण दव्वं दु, पढिदव्वं सुधीहि य।।81।।

जो जीव-अजीव आदि द्रव्यों एवं पुण्य-पापादि का ख्यापक है, बंध व मोक्ष का भी वर्णन करने वाला है, सुधीजनों को ऐसे द्रव्यानुयोग का अध्ययन करना चाहिए।

ज्ञानाचार भेद

गंथत्थोभय-यालो य, विणयो उवहाणगं।
अणिण्हं बहुमाणं च, णाणायारो दु अट्ठहा॥82॥

ग्रंथाचार, अर्थाचार, उभयाचार, कालाचार, विनयाचार, उपधानाचार, अनिह्नवाचार व बहुमानाचार इस प्रकार आठ प्रकार का ज्ञानाचार है।

स्वाध्याय

पढणं जिण-सुत्ताणं, सज्झाओ सहिदाय दु।
अण्णाण-णासगो णिच्चं, सज्झाओ परमो तवो॥83॥

स्वहित के लिए जिनेंद्र भगवान के सूत्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय है। वह स्वाध्याय नामक परम तप नित्य ही अज्ञान का नाशक है।

आगमसुणणे लीणो, धम्मसवणइच्छुगो।
परमट्ठं हि जाणेदि, णण्णो जिणेहि भासिदं॥84॥

जो आगम को सुनने में लीन है और जो धर्म श्रवण करने की आकांक्षा से युक्त है वह ही परमार्थ को जानता है, अन्य नहीं, ऐसा जिनेंद्रदेव ने कहा है।

स्वाध्याय भेद

वायणा पिच्छणा णेयो, आमणाय य देसणा।
अणुवेक्खा हु सज्झाओ, पंचहा तच्चणाणिणा॥85॥

तत्वज्ञानी को पाँच प्रकार का स्वाध्याय जानना चाहिए- वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय व देशना।

ज्ञान माहात्म्य

सुदणाणेण णाणस्स, पयासो सय वड्ढदे।
सुद्धो वदं तवो तेणं, चित्तं चित्तम्मि बज्झदे।।86।।

श्रुतज्ञान से ज्ञान का प्रकाश वृद्धिंगत होता है, उससे व्रत व तप शुद्ध होते हैं एवं चित्त चित्त में बंध जाता है।

हणदे रिउ-रागादिं, णाणसत्थेण सव्वदा।
मोहोवसम-संगामे, मुत्तित्थी-वंछगो मुणी।।87।।

मुक्ति स्त्री के अभिलाषी मुनि रागादि शत्रु को ज्ञान रूपी शस्त्र के द्वारा सर्वदा मोह उपशम रूप संग्राम में नष्ट कर देते हैं।

णेव लोगिग-संपत्ती, णाणफलं दु संजमो।
धणेण बंधदे कम्मं, सम्मवदेहि मुंचदे।।88।।

ज्ञान का फल लौकिक संपत्ति नहीं अपितु संयम है। धन-संपत्ति से कर्मों का बंध होता है एवं सम्यक् व्रतों से कर्मों से छूटता है।

संवड्ढदे दु सण्णाणं, साहम्मीसु जहा जहा।
तहा तहा विणस्सेदि, संसार-मोह-संददी।।89।।

साधर्मियों में जैसे-जैसे सम्यग्ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे-वैसे संसार-मोह की संतति नष्ट हो जाती है।

आलोगेणं विणा लोओ, मग्गं णो अवलोअदे।
विणा गंथेण धम्मत्थी, धम्ममग्गं जहा तहा।।90।।

जिस प्रकार आलोक के बिना यह लोक मार्ग को नहीं देख पाता, उसी प्रकार ग्रंथों वा आगम के बिना धर्मार्थी धर्म-मार्ग को नहीं देख पाता।

जेण वड्ढेदि चित्तस्स, णिम्मलत्तं करेज्ज तं।
सुजदणेण सण्णाणी, सण्णाणं सय अज्जदे।।91।।

जिससे चित्त की निर्मलता वृद्धि को प्राप्त होती है, वही करना चाहिए। सम्यग्ज्ञानी को सदैव सम्यक् यत्नपूर्वक सम्यग्ज्ञान का अर्जन करना चाहिए।

रायाइ-सव्वदोसा दु, जोगी सिग्घं विणस्सदे।
संवेगादि-गुणा सव्वा, सुदणाणेण वड्ढदे।।92।।

श्रुतज्ञान के माध्यम से योगी रागादि सर्वदोषों को शीघ्र नष्ट कर देता है। श्रुतज्ञान से संवेगादि सभी गुण वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

सण्णाण-संजुदो जीवो, सग्गमोक्खाण वल्लहो।
मिच्छाणाण-जुदो णिच्चं, भवसिंधुम्मि बुड्ढदे।।93।।

सम्यग्ज्ञान से युक्त जीव स्वर्ग व मोक्ष का वल्लभ होता है। जबकि मिथ्याज्ञान से युक्त जीव नित्य ही भवसागर में डूब जाता है।

णट्ठं मिदं गदं आहो, चिंतेदि णेव पंडिदो।
णाणि-अण्णाणि-मज्झम्मि, भेयो जाणेज्ज एरिसो॥94॥

नष्ट, मृत अथवा बीती वस्तु या व्यक्ति के संबंध में पंडितजन कदापि चिंता नहीं करते। ज्ञानी और अज्ञानी के मध्य ऐसा ही भेद जानना चाहिए।

छेदगं संसगाणं च, परोक्खत्थस्स जाणगं।
लोयणरूवसण्णाणं, णेव सो जम्मि अंधगो॥95॥

अनेक संशयों का छेद करने वाला एवं परोक्ष पदार्थ को जानने वाला, सभी का लोचन रूप सम्यग्ज्ञान जिसमें नहीं है, वही अंधा है।

णाणेण जाणदे तच्चं, अतच्चं च हिदाहिदं।
बंधं मोक्खं सुहं दुक्खं, धम्मं पावं तहा फलं॥96॥

ज्ञान से ही जीव तत्त्व-अतत्त्व, हित-अहित, बंध-मोक्ष, सुख-दुःख, धर्म-पाप तथा उनके फल को जानता है।

धम्मस्स कारणं णाणं, णाणं मोहप्पणासगं।
सम्मजुत्तियरं णाणं, णाणं सुहस्स कारणं॥97॥

ज्ञान धर्म का कारण है, ज्ञान मोह का नाशक है, ज्ञान सम्यक् युक्ति को करने वाला है और ज्ञान सुख का कारण है।

णाणेण णिम्मला कित्ती, सव्व-इड्ढी हिदंयरा।
णाणेणं केवलं णाणं, णाणेण सासयं सुहं॥98॥

श्रुत ज्ञान से निर्मल कीर्ति होती है, ज्ञान से सभी हितकारी ऋद्धियाँ होती हैं, ज्ञान (श्रुतज्ञान) से केवलज्ञान होता है और ज्ञान से ही शाश्वत सुख होता है।

महाणिही हु सण्णाणं, अपत्ते जम्मि पाणिणो।
भमंति घोर-संसारे, लहंति दुस्सहं दुहं॥99॥

सम्यग्ज्ञान ही महानिधि है; जिसके प्राप्त न होने पर प्राणी घोर संसार में भ्रमण करते हैं एवं दुःसह दुःख को प्राप्त करते हैं।

सुवयणं मदे अण्णे, जिणागमस्स हि सया।
मुत्तिअं दिक्खिदे अण्णं, सिंधूदु जायदे धुवं॥100॥

अन्य मत में जो शुभ वचन दिखाई देते हैं, वे सब सदा जिनागम के ही हैं। क्योंकि जो मोती अन्य कहीं दिखाई देते हैं वे सब सदा सागर से ही उत्पन्न होते हैं।

भवे ण जं दुहं कट्ठं, एरिसं मइ पाविदं।
पिविदं सिविणे णो वि, जिणागम-रसामियं॥101॥

लोक में ऐसा दुःख या कष्ट नहीं है जो मेरे द्वारा प्राप्त नहीं किया गया हो। मैंने स्वप्न में भी कभी जिनागम रूपी रसामृत का पान नहीं किया।

अत्थं सद्दहिदूणं जो, जिणसुत्तं पढेदि सो।
रुइणा णिज्जरं मोक्खं, अप्पसंतिं लहेदि सो॥102॥

जो अर्थ (पद) पर श्रद्धा करके जिनसूत्र का रुचिपूर्वक अध्ययन करता है वह निर्जरा, मोक्ष व आत्मशांति को प्राप्त करता है।

अंतहीणं सुदं थोवो, यालो अज्जं पि दुम्मदी।
गहिदव्वं सुणाणं तं, जं सय दुक्ख-णासगं॥103॥

श्रुत का अंत नहीं है, काल थोड़ा है, आज दुर्मति भी है अर्थात् बुद्धि पदार्थ को कठिनाई से ग्रहण करती है इसलिए जो ज्ञान दुःखों का क्षय करता है वही सम्यक्ज्ञान ग्रहण करना चाहिए।

णिम्मलजलेण वत्थं, विमलं सच्छदप्पणो।
जह तहेव बुद्धी वि, णाणब्भासेण णिम्मला॥104॥

जिस प्रकार निर्मल जल से वस्त्र निर्मल होता है, दर्पण स्वच्छ होता है उसी प्रकार बुद्धि ज्ञान के अभ्यास से निर्मल होती है।

रदीए अप्पझाणम्मि, अप्प-समिद्धि-कारणं।
वेरग्ग-जणगं णाणं, णिच्चं सव्व-हिदंकरं॥105॥

जो स्वात्मध्यान में रति का कारण है, आत्मसंपदा का कारण है और वैराग्य को उत्पन्न करने वाला है वही ज्ञान सर्वहितकारी है।

सण्णाणम्मि सुणाणीसुं, विणयभाव-धारणं।
सुदभत्तीइ सड्ढाए, सण्णाण-विणयो सया॥106॥

श्रुतभक्तिपूर्वक, श्रद्धा से सम्यग्ज्ञान वही सम्यग्ज्ञानियों में विनयभाव धारण करना सदा सम्यग्ज्ञान विनय है।

अंगबज्झपविट्ठाणं, धारगाणं च कुव्वणं।
सण्णाण-विणयो णिच्चं, उहयलच्छिकारणं॥107॥

अंग बाह्य, अंगप्रविष्ट और उनके धारकों की नित्य विनय करना सम्यग्ज्ञान विनय है, जो उभय अर्थात् अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग लक्ष्मी का कारण है।

सुक्कपक्खस्स चंदोव्व, णदीव वरिसाइ य।
सण्णाणं चिय वड्ढेदि, विणयेणं हि सव्वदा॥108॥

जिस प्रकार शुक्लपक्ष में चंद्रमा वृद्धि को प्राप्त होता है, वर्षा से नदी वृद्धि को प्राप्त होती है, उसी प्रकार विनय से सदा ही सम्यग्ज्ञान वृद्धिंगत होता है।

दीवो दिणस्स मत्तंडो, मिअंगो रयणीइ य।
अप्पदीवो य सण्णाणं, लहेज्ज विणयेण हि॥109॥

दिन का दीपक सूर्य है, रात्रि का दीपक चन्द्र है, आत्मा का दीपक सम्यग्ज्ञान है। उस सम्यग्ज्ञान को विनय से ही प्राप्त किया जा सकता है।

णाणं पमोद-वच्छल्ल-गुणादीण पगासगं।
पसमेगत्त-धीरादी, भावणा-विड्ढिकारगं॥110॥

सम्यग्ज्ञान प्रमोद, वात्सल्य आदि गुणों का प्रकाशक है एवं प्रशम, एकत्व व धैर्यादि भावनाओं की वृद्धि करने वाला है।

होही हवेदि होस्सेदि, भव्वुल्लो जो वि सो सिवो।
सण्णाणम्मि सुणाणीसुं, पहावो विणयस्स दु॥111॥

जो कोई भी भव्यजीव सिद्ध हुआ है, हो रहा है और आगे होगा वह सब सम्यग्ज्ञान व सम्यग्ज्ञानियों में विनय का ही प्रभाव है।

विणयेण सया ओही, केवली सुदकेवली।
सेट्ठो णिमित्तणाणी य, हवंति मणपज्जया॥112॥

विनय से ही जीव सदा निमित्तज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, श्रुतकेवली और केवली होता है।

विणदो माणवो जो वि, णिच्चं सुगुणवड्ढगो।
विणयेण अघं हंति, तं विणयं धरेज्ज दु॥113॥

जो भी मनुष्य नित्य विनम्र होता है वह सुगुणों का वर्द्धक होता है। विनय से पाप नष्ट हो जाते हैं अतः सदा विनय को धारण करना चाहिए।

चारित्र विनय

अणंतसुहसंपण्णो, जेण अप्पा खणम्मि हि।
तं दु पवित्तचारित्तं, णमंसामि पुणो पुणो॥114॥

जिसके द्वारा आत्मा क्षणभर में ही अनंत सुख से संपन्न हो जाता है उस परम पवित्र चारित्र को मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ।

चारित्र लक्षण

मणवयणकायादो, किदाइ-करणादु य।
उज्झणं सव्वपावाणं, चरियं कम्मणासगं।।115।।

मन, वचन, काय से एवं कृतादि करण अर्थात् कृत, कारित, अनुमोदना से सर्व पापों का त्याग करना, सर्व कर्मों को क्षय करने वाला चारित्र है।

विनम्र कौन?

सय चरियवंतेसु, चारित्ते विणयं तहा।
धारदे विणदो जुत्तो, चरिय-विणयेण हु।।116।।

चारित्र और चारित्रवानों में जो विनय धारण करता है वह चारित्र विनय से युक्त विनम्र है।

विणयो सेट्ठणीरं व, वड्ढिदुं चरियं तरुं।
संसारी जहा अप्पा, सिस्सेसु विणयो तहा।।117।।

चारित्र रूपी वृक्ष को वृद्धिगत करने के लिए विनय श्रेष्ठ जल के समान है। जिस प्रकार शरीरधारियों में आत्मा होती है उसी प्रकार शिष्यों में विनय जाननी चाहिए।

व्रत भेद

बेविहं वद-मक्खादं, अणुव्वदं महव्वदं।
अणुव्वदी य सागारी, अणायारी महव्वदी।।118।।

व्रत दो प्रकार के कहे गए हैं—अणुव्रत व महाव्रत। सागारी अणुव्रती और अनगारी महाव्रती कहे जाते हैं।

श्रावक व्रत

पंच-अणुव्वदं सत्तं, सीलव्वदं च बेविहं।
चदुसिक्खावदाइं च, तिण्णिगुणव्वदाणि हु॥119॥

पाँच अणुव्रत व सात शीलव्रत होते हैं। यह शीलव्रत दो प्रकार का है—चार शिक्षाव्रत और तीन गुणव्रत।

अणुव्रत

अहिंसाचोरियं सच्चं, बंभो य संग-सीमआ।
अणुव्वदं हिदत्थं हि, भासिदं वीदरागिणा॥120॥

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व परिग्रह-परिमाण, ये पाँच अणुव्रत सर्वहित के लिए वीतरागी प्रभु के द्वारा कहे गए हैं।

गुणव्रत

दिगदेसव्वदं णिच्चं, अणत्थदंडउज्झणं।
वड्ढगाणि गुणाणं च, तिण्णि गुणव्वदाणि हु॥121॥

दिग्व्रत, देशव्रत एवं अनर्थदण्ड त्याग करना ये तीन गुणव्रत हैं, जो आत्मगुणों की वृद्धि करने वाले हैं।

शिक्षाव्रत

सामाइयं विसुद्धीए, पव्वादीसु हु पोसहो।
वेज्जावच्चं वदं सिक्खा, भोगोपभोग-सीमआ॥122॥

जिनागम में शिक्षाव्रत चार कहे गए हैं–विशुद्धिपूर्वक सामायिक, पर्वादि में प्रोषध, वैय्यावृत्ति और भोगोपभोग परिमाण।

महव्वदाण सिक्खाए, दादू विरत्ति-वड्ढगं।
सिक्खावदं मुणेदव्वं, सल्लेहणाइ कारणं॥123॥

शिक्षाव्रत महाव्रतों की शिक्षा देने वाला, विरक्ति-वर्द्धक एवं सल्लेखना का कारण जानना चाहिए।

श्रावक की ग्यारह प्रतिमा

दंसणं सुव्वदं हंदि, सामाइयं च पोसहो।
सचित्त-रत्तिभुत्तीणं, चागो बंभवदं तहा॥124॥

आरंभ-संगचागो य, अणुमदिस्स सव्वदा।
उद्दिट्ठस्स य चागो वि, सावय-पडिमा वरा॥125॥ (जुम्मं)

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमति-त्याग व उद्दिष्टत्याग, ये श्रावक की श्रेष्ठ ग्यारह प्रतिमाएँ हैं।

श्रावक के कर्त्तव्य

जिणपूयाइ सेवाए, णाणे सीले वदे तवे।
दाणे जवे गिहत्था दु, विसुद्धीए सया रदा॥126॥

जिनपूजा, गुरुसेवा, ज्ञान, शील, व्रत, तप, दान व जप में गृहस्थों को विशुद्धिपूर्वक रत रहना चाहिए।

णायेण अज्जिदं अत्थं, सवराणुग्गहस्स दु।
सुपत्ताणं सुभत्तीए, देदि सुदायगा गुणी।।127।।

गुणी सम्यक्दाता न्यायपूर्वक अर्जित धन को स्वपर अनुग्रह के लिए सुपात्रों को दान देता है।

श्रमण व्रत

पंचमहव्वदाइं च, पंचसमिदि-सोक्खदा।
तिगुत्ती सम्मचारित्तं, अणगाराण उच्चदे।।128।।

पाँच महाव्रत, सुख देने वाली पाँच समिति एवं तीन गुप्ति ये अनगारों का सम्यक् चारित्र कहा गया है।

अट्ठावीसगुणेणं च, चउतीसुत्तरेण य।
करवालेण घादेज्जा, कम्मसत्तुं सया जदी।।129।।

यतिजन 28 मूलगुण और 34 उत्तरगुण रूपी तलवार से कर्मशत्रु का सदा घात करते हैं।

मोह नाश से दोष विनाश

मोहकम्मरिउणट्ठे, सव्वदोसा खयंति हु।
धम्मो सम्मत्तणट्ठे य, मूले णट्ठे जहा तरू।।130।।

मोहनीयकर्म रूपी शत्रु के नष्ट होने पर सर्व दोष निश्चित रूप से उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सम्यक्त्व के नष्ट होने पर धर्म और मूल के नष्ट होने पर वृक्ष नष्ट हो जाता है।

असंयम त्याग

जम्म-मिच्चु-जरा-दुक्खं, इत्थी-पुत्त-धणाण वा।
घोरं लहदि संसारी, मुंचह तं असंजमं॥131॥

संसारी जीव जन्म, मृत्यु, जरा, स्त्री, पुत्र या धन का घोर दु:ख प्राप्त करता है अत: असंयम को त्यागो।

वैराग्य महिमा

वेरग्गेण दु पावेदि, अप्पसोक्खं णिरामयं।
णस्संति सव्वदुक्खाइं, उहयसुहकारणं॥132॥

वैराग्य से आत्मसुख प्राप्त होता है, आरोग्य प्राप्त होता है। वैराग्य से सर्वदु:ख नष्ट हो जाते हैं। वह वैराग्य ही उभय सुख अर्थात् भवसुख और शिवसुख का कारण है।

अक्ख-विसय-मग्गादो, मणहत्थि-णिरोहणं।
णाणंकुसेण सद्धिं च, वेरग्ग-संकलेण दु॥133॥

मन रूपी हाथी को पंचेंद्रिय विषयरूपी मार्ग में जाने से रोकना ज्ञान रूपी अंकुश के साथ वैराग्य रूपी सांकल से ही संभव हो सकता है।

रत्नत्रय बिना मोक्ष नहीं

सम्मत्तेण विणा णाणं, विणा णाणेण णो वदं।
तेण विणा ण णिव्वाणं, होदि होहीअ होस्सदि॥134॥

सम्यक्त्व के बिना सम्यग्ज्ञान, सम्यग्ज्ञान के बिना व्रत (सम्यक् चारित्र) और सम्यक् चारित्र के बिना मोक्ष न होता है, न हुआ और न कभी होगा।

बोधि दुर्लभता

अणादीदु भमंतेणं, संसारे णेव पाविदो।
बोहिलाहो समाही य, भुंजेदि दुस्सहं दुहं॥135॥

अनादिकाल से इस संसार में भ्रमण करते हुए जीव ने कभी बोधिलाभ व समाधि को प्राप्त नहीं किया इसलिए दुःसह दुःख को भोग रहा है।

विणा जिणिंद-धम्मेणं, बुड्ढेदि भवसायरे।
जम्मंतो य मरंतो वि, आराहगो हवेज्ज णो॥136॥

जिनेंद्र धर्म के बिना जीव संसार सागर में डूब जाता है। जन्म व मरण करते हुए आज तक यह जीव आराधक नहीं हुआ।

मरणणंतवारं च, पाविदं भव-पाणिणा।
जिणसत्थं गुरू धम्मो, णज्जंतं रयणत्तयं॥137॥

संसारी प्राणी ने अनंत बार मरण प्राप्त किया। इसने आज तक जिनशास्त्र, निर्ग्रंन्थ गुरु, जिनधर्म व रत्नत्रय को प्राप्त नहीं किया।

समत्व भाव

ठाएज्ज जो समत्ते सो, अट्टं रुद्दं च मुंचिय।
भुंजंतो परमाणंदं, वरणाणं हि पावदे॥138॥

जो आर्त्त व रौद्रध्यान को छोड़कर समत्व भाव में ठहरता है, वह परमानंद को भोगते हुए श्रेष्ठ ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

एकत्व भाव

मादू णत्थि पिदू णत्थि, णत्थि बंधू सहोदरो।
धणं णत्थि गिहं णत्थि, तुज्झं जग्ग तुमं अहो।।139।।

संसार में तुम्हारी न कोई माता है, न पिता है, न बंधु है, न सहोदर है, न धन है और न घर है, अतः अहो! तुम जागो।

समाधि क्या?

णियप्पगुणरक्खत्थं, जिण्णदेहस्स उज्झणं।
धम्मज्झाणं च वड्ढंतो, समाही सय उच्चदे।।140।।

निजात्म गुणों की रक्षा के लिए धर्मध्यान को बढ़ाते हुए जीर्ण देह का त्याग करना समाधि कही जाती है।

भंडारे अणलुप्पण्णे, धणदो रक्खदे धणं।
मरणसमये धम्मी, गुणा समाहि-मोक्खदा।।141।।

जिस प्रकार भंडार में अग्नि लग जाने पर धनद अपने धन की रक्षा करता है, उसी प्रकार मरण समय में धर्मात्मा, गुणों की रक्षा करता है। यही समाधि है जो मोक्ष को देने वाली है।

विनय का फल

गुरु संरक्खदे सिस्सं, संवेगं विणयो तह।
मित्तिं झाणं च वच्छल्लं, विरायं सुतवं दयं॥142॥

जिस प्रकार गुरु, शिष्य को संरक्षण देता है, उसी प्रकार विनय-मैत्री, ध्यान, संवेग, वात्सल्य, वैराग्य, तप व दया को संरक्षण देता है।

स-सुद्धप्पाणुभूदी य, वेरग्गं गुण-संजमो।
णिम्मलं सुह-चारित्तं, सुविणयेण वड्ढदे॥143॥

सम्यक् विनय से निज शुद्धात्मानुभूति, वैराग्य, गुण, संयम, निर्मल चारित्र वृद्धिगत होता है।

तप विनय

तवं तिलोयपुज्जं य, विणयेणं सुसोहिदं।
आखंडलो वि कंखेदि, तल्लद्धीए णमामि तं॥144॥

तप तीनों लोकों में पूज्य है, वह तप विनय से ही सुशोभित होता है। सौधर्म इन्द्र भी उस तप की आकांक्षा करता है। उस तप की प्राप्ति के लिए मैं उसे नमस्कार करता हूँ।

तप लक्षण

तवो णिरोहदे इच्छं, जीवप्पं अवि सोहदे।
सुतवं जदि इच्छेदि, विणयेणं हि संभवो॥145॥

जो इच्छा का निरोध करता है वह तप है अथवा जो जीवात्मा को भी शुद्ध करता है वह तप है। यदि सम्यक् तप की आकांक्षा करते हो तो वह विनय से ही संभव है।

तप भेद

बहि-अंतर-भेयादो, दुविहो सव्वदा तवो।
बहिरो उववासादी, पायच्छित्ताइ-अंतरो॥146॥

बाह्य व अंतरंग के भेद से तप सदैव दो प्रकार का है। उपवास आदि बाह्य तप हैं एवं प्रायश्चित्तादि अंतरंग तप हैं।

अणसणवमोदारियं तहा रस-चागणं।
सुवित्ति-परिसंखाणं, विवित्त-सयणासणं॥147॥

अंते कायकिलेसो हि, छव्विहो बहिरो तवो।
पायच्छित्तं तवो अंतो, विणयो विदियो तहा॥148॥

वेज्जावच्चं च सज्झाओ, विउसग्गो सुपुण्णदा।
वरं झाणं समुद्दिट्ठं, कमसो जिण-आगमे॥149॥ (तिगं)

अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, विविक्त शय्यासन एवं अंत में कायक्लेश ये छह प्रकार के बाह्य तप हैं। प्रायश्चित्त नामक प्रथम अंतरंग तप है एवं विनय द्वितीय अंतरंग तप है। पुनः वैय्यावृत्ति, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग एवं उत्तम ध्यान, इस प्रकार जिनागम में पुण्यदायक क्रमशः छह अंतरंग तप कहे गए हैं।

अनशन तप

सुमंतसाहणादीणं, आकंखाइ विणा किदो।
उववासो सया णेयो, अणसणं महातवो।।150।।

मंत्र, साधन आदि की आकांक्षा के बिना किया गया उपवास सदैव अनशन नामक महातप जानना चाहिए।

अवमौदर्य तप

जस्स पयडि-आहारो, जो तादो णूण-भुंजणं।
अवमोदरियं जाण, दोसपसमकारगं।।151।।

जिसका जो प्राकृतिक आहार है उससे कम भोजन करना, दोषों को शमन करने वाला अवमौदर्य तप जानना चाहिए।

वृत्तिपरिसंख्यान तप

सुदव्वखेत्तयालाइ-मज्जादं कट्टु कुव्वणं।
वित्तीए परिसंखाणं, तवो जाणेज्ज सव्वदा।।152।।

सुद्रव्य, क्षेत्र, कालादि की मर्यादा करके वृत्ति की परिसंख्या करना सदा वृत्तिपरिसंख्यान तप जानना चाहिए।

रसत्याग तप

लवणखीर-सप्पीणं, दहितिल्लाण उज्झणं।
सक्कराए सुसत्तीए, रसचागो तवो सुहो।।153।।

नमक, दूध, घी, दही, तेल, शर्करा का शक्तिपूर्वक त्याग करना रसत्याग नामक शुभ तप है।

रसचागेण उप्पण्णं, सुद्धप्पस्स महारसं।
जोगी लीणो सगप्पम्मि, पिवंति दु अहण्णिसं॥154॥

रसत्याग से उत्पन्न शुद्धात्मा के महारस को निजात्मा में लीन योगी अहर्निश पीते हैं।

विविक्त शय्यासन तप

सुपउमासणादीहिं, समभावेण झायणं।
देहकट्ठं सहंतो य, विवित्त-सयणासणं॥155॥

समताभाव से शरीर का कष्ट सहन करते हुए पद्मासन आदि प्रकार के आसनों से ध्यान करना विविक्त शैय्यासन तप है।

कायक्लेश तप

अइसीदुण्ह-बाहाए, रोयाइ-जणिदस्स य।
वेयणा-सहणं काय-किलेसो उच्चदे तवो॥156॥

अति शीत व अति ऊष्ण की बाधा से उत्पन्न रोगादि की वेदना का सहन करना कायक्लेश तप कहा जाता है।

देहकट्ठं स-बुद्धीए, दायंतो सहणं सया।
समेण णिज्जराए काय-किलेसो मुणीण हि॥157॥

कर्म निर्जरा के लिए स्वबुद्धिपूर्वक अपनी देह को कष्ट देते हुए उसे समता भाव से सहन करना मुनियों का कायक्लेश तप है।

प्रायश्चित्त तप

कसायेण पमादेणं, अण्णाणेण किदं अघं।
झडत्ति णासिदं जेणं, पायच्छित्तं महातवो।।158।।

कषाय, प्रमाद या अज्ञान से किए गए पाप जिससे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, वह प्रायश्चित्त नामक महातप है।

विनय तप

कसाय-विणिवत्ती य, साहूसु रयणत्तये।
णम्मवित्ती तहा भत्ती, विणयो सय जाणह।।159।।

कषायों की निवृत्ति एवं रत्नत्रय व रत्नत्रयधारक साधुओं में भक्ति व नम्रवृत्ति सदा विनय जाननी चाहिए।

वैय्यावृत्ति तप

पीडादुक्खणिवादेसुं, णिरवज्ज-विहीइ दु।
साहूणं हरणं ताणं, वेज्जावच्चं महागुणो।।160।।

गुणीजनों के पीड़ा व दुःखों के आने पर निरवद्य विधि से उनको दूर करना वैय्यावृत्ति नामक महागुण है।

स्वाध्याय तप

अवहेडित्तु आलस्सं, वायणं सत्थचिंतणं।
मणणं स-हिदत्थं हि, सज्झाओ परमोतवो।।161।।

स्वहित के लिए आलस्य को त्यागकर शास्त्रों का वाचन, चिंतन, मनन करना स्वाध्याय नामक परम तप है।

व्युत्सर्ग तप

वरखमाइभावेहिं, ममत्तभाव-उज्झणं।
देहाइ-परदव्वादो, विउसग्गो विजाणह॥162॥

उत्तम क्षमादि भावों से शरीर आदि परद्रव्य से ममत्व भाव का त्याग करना व्युत्सर्ग जानना चाहिए।

ध्यान तप

चित्तविक्खेवचागो वा, सण्णाणे चित्तथेरिअं।
चिंतावत्थाण-मेगम्मि, झाणं कम्मविणासगं॥163॥

चित्त के विक्षेप का त्याग अथवा सम्यग्ज्ञान में चित्त की स्थिरता अथवा एक वस्तु में चित्त का अवस्थान (ठहरना) कर्मों को नाश करने वाला ध्यान है।

तप विनय लक्षण

तवेसुं सुतवस्सीसुं, णम्मवित्ती हि सव्वदा।
सुहसरलभावेहि, विणयो तवो सोक्खदा॥164॥

तप व तपस्वियों में शुभ सरल भावों से नम्रवृत्ति ही सदा सुख देने वाली तप विनय है।

सव्वसाहुतवस्सी य, विणयेण णमामि हं।
ताणं सुविणयेणं दु, सिग्घं हि खयदे अघं॥165॥

विनय से युक्त सभी साधु-तपस्वियों को मैं नमस्कार करता हूँ। उनकी विनय से पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

तप विनय से आत्मशुद्धि

कलधोदादि-धादू य, सुज्झेज्ज जह अग्गिणा।
तह तवतवस्सीणं णियप्पा विणयेण हि॥166॥

जिस प्रकार स्वर्णादि धातु अग्नि से शुद्ध हो जाती है उसी प्रकार तप व तपस्वियों की विनय से निजात्मा शुद्ध होती है।

उपचार विनय

अहिगमण-मब्भुत्थाणं, पच्चक्ख-गुरूसु य।
णमणं काउसग्गादी, मद्दणं पडिलेहणं॥167॥

मणवयणकायेहिं, णमणं गुणकित्तणं।
थुवणं च परोक्खेसुं, उवयारो दु मण्णदे॥168॥ (जुम्मं)

गुरुओं के सामने आने पर खड़े हो जाना, उनके पीछे चलना, नमस्कार करना, उनके पुस्तकादि का शोधन करना, उनके शारीरिक बल के अनुसार घृतादि की मालिश करना एवं कायोत्सर्ग आदि कृतिकर्म करना एवं गुरुओं के परोक्ष में होने पर भी मन-वचन-काय से नमस्कार करना, उनके गुणों का कीर्तन करना, स्तुति करना उपचार विनय मानी जाती है।

उपचार विनय भेद

विणय-उवयारो दु, तिविहो माणसो वयो।
कायो जिणेहि णिद्दिट्ठो, भव्वाण हिद-कारगो॥169॥

भव्यों का हित करने वाली उपचार विनय जिनेंद्र भगवंतों द्वारा तीन प्रकार की निर्दिष्ट की गई है-मानसिक विनय, वचन विनय और काय विनय।

कायिक विनय

कायेण वंदणा पूया, सेवा साहूण अच्चणा।
णम्मवित्ती य जेट्ठेसुं, काय-सुविणओ सुहो॥170॥

शरीर से साधुओं की सेवा, पूजा, वंदन, अर्चन एवं बड़े जनों में नम्रवृत्ति (विनय) शुभ कायिक विनय है।

वचन विनय

थुदी कित्ती सुभत्ती य, इट्ठो सिट्ठो य सव्वदा।
सव्वाणं महुरालावो, जाणेज्ज विणओ वचो॥171॥

स्तुति, कीर्ति, भक्ति तथा सभी के लिए इष्ट, शिष्ट व मधुर आलाप वचन विनय जानना चाहिए।

मानसिक विनय

सुदाइ-भावणाणं च, तच्च-गुणाण चिंतणं।
सुचिंतणं व सज्झाणं, विणओ सय माणसो॥172॥

श्रुत आदि भावनाओं का चिंतन करना, तत्त्व व गुणों का चिंतन करना, शुभ चिंतन एवं सद्ध्यान सदा ही मानसिक विनय है।

परोक्ष विनय

विणयो तिण्णि पच्चक्खं, कायिगो वय-माणसं।
होज्ज तिण्णि परोक्खं पि, ताणणुवट्ठिदीइ य॥173॥

अंजलिकरणं णिच्चं, सेट्ठाणुऊल-वट्टणं।
थुवणं संसणं आदी, सिक्खाणाण-सुपालणं॥174॥ (जुम्मं)

कायिक, वाचनिक व मानसिक ये तीनों प्रत्यक्ष विनय कही गई हैं। ये तीनों विनय परोक्ष भी होती हैं। उन गुरुओं की अनुपस्थिति में भी नित्य हाथ जोड़ना, श्रेष्ठ अनुकूल प्रवृत्ति करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना, उनकी शिक्षा व आज्ञा का पालन करना आदि परोक्ष विनय है।

उपचार विनय महिमा

गुरुसुं-णम्मवित्ती य, विज्जा-सुजस-उपचार कारणं।
अप्पगुणाण विड्ढीए, नम्र-बल-कलाण य॥175॥

गुरुजनों में नम्रवृत्ति विद्या व सुयश का कारण है। आत्मगुणों की वृद्धि का कारण है एवं आयु, बल व कलाओं का कारण है।

सुविणयुवयारेणं, पदिट्ठं लहदे पदं।
पुण्णफलं पदिट्ठं हु, पाविट्ठो हु कया वि णो॥176॥

सम्यक् उपचार विनय से जीव पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। पापिष्ठ जीव कदापि प्रतिष्ठा वा पुण्यफल को प्राप्त नहीं करता।

विज्जत्थी पावदे विज्जं, उवयारेण सव्वदा।
णेव को वि विणा तेणं, विज्जं विज्जा-फलं तहा।।177।।

उपचार विनय से विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है। उस उपचार विनय के बिना कोई भी विद्या तथा विद्या के फल को प्राप्त नहीं करता।

विनय का वैशिष्ट्य

सव्वण्हूसु वरं णाणं, सुगंधो सुमणेसु य।
इक्खुदंडेसु मिट्ठत्तं, सिस्सेसु विणयो महा।।178।।

जिस प्रकार सर्वज्ञ देवों में उत्कृष्ट ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान, फूलों में सुगंध, इक्षुदंडों में मिष्टता होती है, उसी प्रकार शिष्यों में महाविनय गुण होता है।

मुत्ताए सोहदे सिप्पी, रयणेणं च सायरं।
विणयेण सया सिस्सा, सलिलेणं च णिम्मगा।।179।।

जिस प्रकार मोती से सीप, रत्न से सागर एवं जल से सरिता सुशोभित होती है, उसी प्रकार विनय से शिष्य सदा सुशोभित होता है।

पाणमूलं च देहीणं, आणपाणोव्व जाणह।
सुहगदीइ याणं व, विणओ मोक्खसाहणं।।180।।

जिस प्रकार संसारी प्राणियों के लिए श्वासोच्छ्वास प्राणों का मूल है, उसी प्रकार विनय धर्म का मूल है, शुभ गति में ले जाने के लिए यान के समान है और मोक्ष का साधन है।

णाणं वड्ढदि सुज्झेदि, विणयेण सुदंसणं।
मोक्खमग्गो पसत्थो य, चारित्तं होदि णिम्मलं।।181।।

विनय से सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है, ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है, चारित्र निर्मल होता है और मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है।

णारीणं जह सोहग्गं, सूराणं सूरवीरदा।
सज्जणाणं च सिस्साणं, विणओ तह भूसणं।।182।।

नारियों का आभूषण सौभाग्य, शूरवीरों का आभूषण शूरवीरता है तथा सज्जनों व शिष्यों का आभूषण विनय है।

सम्मत्तं तह सण्णाणं, विणयेण विणा णहि।
वेरग्गं सुतवो झाणं, तं विणा णेव संभवो।।183।।

विनय के बिना सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान नहीं होता। विनय के बिना वैराग्य, सम्यक् तप व ध्यान संभव नहीं है।

णाणं णरस्स सारो य, तस्स सारो सुसंजमो।
विणयो तस्स तेणं च, आविहवंति सग्गुणा।।184।।

मनुष्यभव का सार ज्ञान है, उस ज्ञान का सार संयम है और उस संयम का भी सार विनय है। उस विनय से ही सद्‌गुण प्रकट होते हैं।

विणयेणं सया पुण्णं, विणयेणं सुहं तहा।
विणयेणं हि सण्णाणं, विणयेणं तवो वदं॥185॥

विनय से सदा पुण्य होता है, विनय से सर्वसुख होता है, विनय से सम्यग्ज्ञान होता है तथा विनय से ही तप व व्रत होता है।

णाणलाहो विसुद्धी य, सम्म-आराहणाइ दु।
विणयेण सुसिद्धी तं, धारदु विणयं सया॥186॥

विनय से ज्ञान का लाभ होता है, भावों में विशुद्धि वृद्धिगत होती है, सम्यक् आराधना की सिद्धि होती है अतः सदैव विनय धारण करें।

ग्रंथकार की लघुता

अप्पधीए पमादेणं, चुक्केज्ज गंथ-लेहणे।
वच्छल्लेण खमित्ता मे, सोहज्जा सुदधारगा॥187॥

अल्पबुद्धि या प्रमाद से ग्रंथ लेखन में यदि चूक हो गई हो तो श्रुतधारक यतिराज वात्सल्यपूर्वक मुझे क्षमा करके ग्रंथ संशोधित करें।

अन्तिम मङ्गलाचरण

संतिं सिंधुं महासूरिं, तवस्सिं पायसायरं।
जयकित्तिं महाजोगिं, णमामि देसभूसणं॥188॥

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, महायोगी

आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज, भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

सिद्धंत-चक्कवट्टिं च, रट्ठसंतं महामुणिं।
विज्जाणंदं गुरुं वंदे, पुण्णो जस्स किवाइ हि।189॥

उन सिद्धांतचक्रवर्ती, राष्ट्रसंत महामुनि आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुदेव की मैं वंदना करता हूँ; जिनकी कृपा से यह ग्रंथ पूर्ण हुआ।

ग्रन्थ प्रशस्ति

गंथो विणयसारो य, रइदो हिदकारणं।
मद्दवधम्मविड्ढीए, सूरिणा वसुणंदिणा॥190॥

यह **'विनयसार'** नामक ग्रन्थ सर्वहित के कारण व मार्दव धर्म की वृद्धि के लिए मेरे आचार्य वसुनंदी के द्वारा लिखा गया है।

जंबुसामि-तवट्ठाणे, भरदपुर-मंडले।
संतिणाह-णिगेदम्मि, रायट्ठाणे सुभारदे॥191॥

पणवीसूणदालीए, वीरव्हे मास-सावणे।
सुहजोगम्मि पुण्णाहे, पुण्णो सव्व-हिदाय हि॥192॥ (जुम्मं)

भारत देश में राजस्थान प्रांत के भरतपुर जिले में जंबूस्वामी तपोस्थली में श्री शान्तिनाथ जिनमंदिर में वीर निर्वाण संवत् 2539 में श्रावण मास में शुभ योग एवं शुभदिवस में यह ग्रन्थ सर्वहितार्थ पूर्ण हुआ।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)			
क्र.सं.	नाम	क्र.सं.	नाम
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	प्राकृत वाणी भाग-5	6.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)
7.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)	8.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)
9.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)	10.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)
11.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)	12.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
13.	तच्चसारो (तत्त्व सार)	14.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)
15.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)	16.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
17.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)	18.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)
19.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)	20.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)
21.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)	22.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)
23.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)	24.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)
25.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)	26.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)
27.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)	28.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)
29.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)	30.	को विवेगी (विवेकी कौन)
31.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)	32.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)
33.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)	34.	धम्मस्स सुत्ति संगहो
35.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)	36.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
37.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)	38.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
39.	समणायारो (श्रमणाचार)	40.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)
41.	लोगुत्तरविट्टी (लोकोत्तर वृत्ति)	42.	समणभावो (श्रमण भाव)
43.	झाणसारो (ध्यानसार)	44.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)
45.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)	46.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)
47.	पसमभावो (प्रशम भाव)	48.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)

49.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)	50.	विणयसारो (विनय सार)
51.	तव-सारो (तप सार)	52.	भाव-सारो (भाव सार)
53.	दाण-सारो (दान सार)	54.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)
55.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)	56.	णाण-सारो (ज्ञान सार)
57.	णीदि-सारो (नीति सार)	58.	आयंस-सिक्खाविही (आदर्श शिक्षाविधि)
59.	दंसण-परिक्खा (दर्शन परीक्षा)	60.	महाणुभावो (महानुभाव)
61.	उववासो (उपवास)	62.	संजम-सारो (संयमसार)
63.	सम्मत्त-सारो (सम्यक्त्व सार)	64.	सज्जण-वयण-विलासो (सज्जन वचन विलास)
65.	विदु-वाणी	66.	सूदग-पादग-णिण्णय-विही (सूतक-पातक निर्णय विधि)
67.	सगसरूवावलोयणं (स्वस्वरूपावलोकन)	68.	सुद्धप्प-थुदी-(शुद्धात्म स्तुति)

टीका ग्रंथ

1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य

1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य

1.	इष्टोपदेश (मुक्ति का वाग्दान)	2.	प्रश्नोत्तर रत्नमालिका (बोधि वृक्ष)
3.	सामायिक पाठ (शिवपथ का रथ)	4.	समाधि तंत्र (स्वात्मोपलब्धि)
5.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार (श्रावकधर्म-संहिता)	6.	ज्ञानांकुश (तत्त्व चिंतन के सूत्र)

प्रवचन साहित्य

1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू

13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	गुरुत्तं भाग 18	32.	चूको मत
33.	जय बजरंगबली	34.	जीवन का सहारा
35.	ठहरो! ऐसे चलो	36.	तैयारी जीत की
37.	दशामृत	38.	धर्म की महिमा
39.	ना मिटना बुरा है न पिटना	40.	नारी का धवल पक्ष
41.	शायद यही सच है	42.	श्रुत निर्झरी
43.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा	44.	सीप का मोती (महावीर जयंती)
45.	स्वाती की बूँद		

हिंदी गद्य रचना

1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म

31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना

1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दुःखों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
27.	अभिनव सिद्धचक्र मंत्रार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि

13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य

1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)

7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   - नवग्रह विधान
   - वास्तु निवारण विधान
   - मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)

2.	श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान		
3.	श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक		
4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		

जिणवाणी-थुदी

महुरं विसदं पिय-गंभीरं
हिदयरं मिदं सिरिजिणवाणिं।

अणेगंतमयं सिआवायमयं
णिरुवमं समं सिरिजिणवाणिं।

जिणसव्वंगादो णिस्सरिदं
भविचित्तहरं सिरिजिणवाणिं।

बारस-अंगेहिं संजुत्तं
लोएपुज्जं सिरिजिणवाणिं।

कंठादिवचोकारणरहिदं
तयरोयहरं सिरिजिणवाणिं।

जगमंगल्लं जगकल्लाणिं
पणमामि सया सिरिजिणवाणिं।